Vindhyan Bloom

ISSN-2319-8478
Vol-15 Issue-3, June 2026

A Referred Peer Review Research Journal

Vindhyan Bloom

ISSN-2319-8478 Vol-15 Issue-3, June 2026

Manuscript Information	*Research Paper*	*Paper No. VBRP- 24*

भारतीय ज्ञान परंपरा और पारिस्थितिक तंत्र: हिंदी साहित्य के झरोखे से

डॉ सीमाबाला अवास्या, *सहायक प्राध्यापक हिंदी, प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस शासकीय माधव महाविद्यालय,**उज्जैन***

साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं, बल्कि उसकी सांस्कृतिक चेतना का संवाहक भी होता है। भारतीय ज्ञान परंपरा में प्रकृति और मनुष्य का संबंध माता और पुत्र का रहा है। हिंदी साहित्य ने इस दार्शनिक विचार को अपनी कविताओं, कहानियों और उपन्यासों में गहराई से पिरोया है। आदिकाल से लेकर समकालीन हिंदी कविता तक, पारिस्थितिक संतुलन (Ecological Balance) और पर्यावरण चेतना का स्वर हमेशा मुखर रहा है। हिंदी के रचनाकारों ने जहाँ एक ओर प्रकृति के सौंदर्य का गान किया, वहीं दूसरी ओर प्रकृति के साथ मानवीय क्रूरता पर समाज को चेतावनी भी दी। साहित्य केवल मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि यह अपने समय के भूगोल, पर्यावरण और पारिस्थितिक तंत्र (Ecosystem) का जीवंत दस्तावेज भी होता है। भारतीय ज्ञान परंपरा में आदि काल से ही प्रकृति को 'परम चेतना' का अंग माना गया है। हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल के संतों ने प्राणिमात्र की समानता की बात की, छायावाद के कवियों ने प्रकृति को सजीव 'माता' के रूप में स्थापित किया और समकालीन लेखकों ने आधुनिक 'इको-क्रिटिसिज्म' (पर्यावरण-विमर्श) के माध्यम से विकास की अंधी दौड़ पर सवाल उठाए। निष्कर्षतः, यह पत्र यह प्रतिपादित करता है कि वर्तमान वैश्विक पर्यावरण संकट का समाधान हिंदी साहित्य की इसी पारंपरिक पारिस्थितिक चेतना में निहित है।

प्रस्तावना (Introduction)

आधुनिक युग में पर्यावरण और पारिस्थितिकी की चर्चा अक्सर वैज्ञानिक और कानूनी दायरों तक सीमित रहती है। परंतु, भारतीय ज्ञान परंपरा की यह विशेषता रही है कि यहाँ पर्यावरण का संरक्षण कानून के डर से नहीं, बल्कि आत्मिक जुड़ाव और सांस्कृतिक मूल्यों के माध्यम से किया जाता था। इस सांस्कृतिक मूल्य को जन-मानस तक पहुँचाने का सबसे बड़ा कार्य 'हिंदी साहित्य' ने किया है।हिंदी साहित्य का इतिहास गवाह है कि हमारे रचनाकारों ने प्रकृति को कभी भी 'जड़' या मनुष्य के उपभोग की 'वस्तु' नहीं माना। साहित्य में प्रकृति के दो रूप मिलते हैं—'आलंबन' (जहाँ प्रकृति स्वयं मुख्य विषय होती है) और 'उद्दीपन' (जहाँ वह मानवीय भावनाओं को उभारती है)। भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रभाव में हिंदी के लेखकों ने प्रकृति के 'आलंबन' रूप को सर्वोपरि माना, जहाँ नदियाँ, पर्वत, पशु और पक्षी मनुष्य के समान ही अधिकार रखने वाले सह-अस्तित्ववादी (Co-existence) घटक हैं।

आदिकाल और अरण्य संस्कृति का प्रभाव :-

हिंदी साहित्य का आरंभिक काल (आदिकाल) भले ही युद्धों और राजाओं के यशोगान का काल रहा हो, लेकिन इसके मूल में भारत की अरण्य (वन) संस्कृति की गहरी छाप थी।नाथ पंथियों और सिद्धों की साधना जंगलों और

ISSN-2319-8478
Vol-15 Issue-3, June 2026

कंदराओं में होती थी। उनकी वाणियों में प्रकृति को साधना के मार्गदर्शक के रूप में देखा गया। इस काल के रासो काव्य (प्रबंध काव्यों) में 'षट्-ऋतु वर्णन' (Six Seasons) और 'बारहमासा' की एक समृद्ध परंपरा मिलती है। अब्दुल रहमान कृत 'संदेश रासक' और चंदबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' में युद्ध के कोलाहल के बीच भी वनों, वन्यजीवों और ऋतु चक्र के प्राकृतिक नियमों (ऋत) का सूक्ष्म चित्रण किया गया है, जो यह दर्शाता है कि प्राचीन काल में युद्ध के समय भी प्रकृति के संतुलन का ध्यान रखा जाता था।

भक्तिकाल - कबीर, जायसी और तुलसी की पारिस्थितिक दृष्टि :- भक्ति काल को हिंदी साहित्य का 'स्वर्ण युग' कहा जाता है। इस काल में भारतीय ज्ञान परंपरा का 'अद्वैत दर्शन' (सब में एक ही ब्रह्म का वास) और सूफियों का 'प्रेम दर्शन' अपने चरमोत्कर्ष पर था। यदि इस काल को पारिस्थितिक दृष्टिकोण से देखा जाए, तो यह 'डीप इकोलॉजी' (Deep Ecology) का बेहतरीन उदाहरण है। भक्ति काल का दर्शन अद्वैतवाद और सूफीवाद से प्रभावित था, जो संपूर्ण चराचर जगत में एक ही ईश्वर के अंश को देखता है। यह विचार पारिस्थितिक तंत्र के 'सह-अस्तित्व' (Co-existence) के सिद्धांत से मेल खाता है।

कबीर और संत काव्य: जीव हिंसा का निषेध

संत कबीरदास ने ईश्वर को किसी मंदिर या मस्जिद में नहीं, बल्कि सृष्टि के कण-कण और प्रत्येक जीव में देखा। उन्होंने खाद्य श्रृंखला के असंतुलन और क्रूरता पर प्रहार करते हुए कहा:

"बकरीपातीखातहै, ताकीकाढ़ीखाल।

जे नर बकरी खात हैं, तिनका कौन हवाल॥"

कबीरदास: प्राणिमात्र की समानता :-कबीरदास ने जीवों पर हिंसा का कड़ा विरोध किया। उनका मानना था कि जो जीवन मनुष्य में है, वही पशु-पक्षियों में भी है:

"दिनभररोजारहतहैं, रातिहनतहैंगाय।

यह तो खून वह बंदगी, कहु क्यों खुशी खुदवाए॥"

कबीर का 'अपरिग्रह' और सादगी का संदेश आज के उपभोक्तावाद को नियंत्रित करने का सबसे बड़ा हथियार है।कबीर का यह दर्शन आज के 'एनिमल राइट्स' (Animal Rights) की नींव रखता है। उन्होंने 'अपरिग्रह' और संतोष पर बल दिया, जो आज के संसाधन-संकट (Resource Crisis) का एकमात्र समाधान है:

"सांई इतना दीजिए, जामे कुटुम समाय।

मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय॥"

मलिक मुहम्मद जायसी: मानवेतर चेतना (Non-Human Consciousness)

सूफी कवि जायसी ने 'पद्मावत' में प्रकृति को मनुष्य के सुख-दुःख में समान रूप से रोते और हंसते हुए दिखाया है। जब नागमती विरह में तड़पती है, तो केवल मनुष्य ही नहीं, बल्कि पूरा जंगल और उसके जीव तड़प उठते हैं:

"पिउ सों कहेहु संदेसड़ा, हे भौंरा हे काग।

सो धनि विरही जरि मुई, तेहिक धुआँ हम्ह लाग॥"

यहाँ भौंरा और कौआ केवल पक्षी नहीं हैं, वे संदेशवाहक हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि भारतीय मनीषा में मनुष्य और पशु-पक्षियों के बीच कोई अभेद्य दीवार नहीं थी।

तुलसी और सूर: प्राकृतिक मर्यादा और ऋतु विज्ञान

ISSN-2319-8478
Vol-15 Issue-3, June 2026

गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के माध्यम से समाज को प्रकृति के नियमों में रहने की सीख दी। किष्किंधाकाण्ड में वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं:

"सरिता जल जलनिधि महुँ जाही।

होई अचल जिमि हरि पद पाही॥"

जैसे नदियाँ समुद्र में जाकर शांत हो जाती हैं, वैसे ही जल चक्र का नियम चलता है। तुलसीदास ने वृक्ष लगाने और वनों की रक्षा को पुण्य कार्य माना। वहीं सूरदास ने 'भ्रमरगीत' के माध्यम से ब्रज की गायों, यमुना के तट, कुंजों और पक्षियों को कृष्ण के विरह में व्याकुल दिखाकर ग्रामीण पारिस्थितिकी (Rural Ecology) का एक अमर चित्र खींचा है।

गोस्वामी तुलसीदास: ऋतु चक्र और नीति नियम

तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के किष्किंधाकाण्ड में वर्षा और शरद ऋतु का जो वर्णन किया है, वह आधुनिक मौसम विज्ञान और पर्यावरण नीति का अद्भुत उदाहरण है:

"भूमिपरतभाढाबरपानी।जनुजीवहि माया लपटानी॥

समिटि समिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा॥"

तुलसीदास जी कहते हैं कि जैसे-जैसे नदियां उमड़कर समुद्र में मिलती हैं, वैसे ही पारिस्थितिक चक्र पूरा होता है। उन्होंने 'परहित सरिस धरम नहिं भाई' कहकर दूसरों के (जिसमें प्रकृति भी शामिल है) कल्याण को ही परम धर्म माना।

रीति काल: प्रकृति का उद्दीपन रूप और ऋतु-संतुलन:-

रीति काल में यद्यपि कविता महलों और राजाओं के आश्रय में सिमट गई थी और प्रकृति का उपयोग मुख्य रूप से श्रृंगार के 'उद्दीपन' के रूप में किया गया, फिर भी कुछ कवियों ने प्रकृति की ऋतु-व्यवस्था को बहुत वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया।कवि सेनापति: रीति काल के कवियों में सेनापति का 'ऋतु वर्णन' बेजोड़ है। उन्होंने ग्रीष्म, वर्षा और शिशिर ऋतु का ऐसा सजीव चित्रण किया है जो यह दिखाता है कि उस दौर का समाज प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म बदलावों के प्रति कितना संवेदनशील था। ऋतुओं का समय पर आना 'ऋत' (प्राकृतिक संतुलन) का प्रतीक था।

आधुनिक काल और छायावाद: प्रकृति चेतना का चरमोत्कर्ष:-

उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में जब भारत में ब्रिटिश शासन के तहत वनों की अंधाधुंध कटाई, रेलवे का विस्तार और औद्योगिकीकरण शुरू हुआ, तब हिंदी के आधुनिक कवियों ने इसके खिलाफ आवाज उठानी शुरू की। भारतेंदु हरिश्चंद्र और मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी कविताओं में भारत के प्राकृतिक वैभव के नष्ट होने पर चिंता जताई।लेकिन, पारिस्थितिक चेतना का जो वैश्विक और दार्शनिक रूप छायावाद (Chhayavad) में दिखा, वह अद्वितीय है। छायावादी कवियों ने प्रकृति को एक 'जड़' वस्तु के बजाय एक 'चेतन देवी' या 'माता' के रूप में देखा।हिंदी साहित्य में पारिस्थितिकी का सबसे वैज्ञानिक और दार्शनिक रूप छायावाद (Chhayavad) में उभरकर आया। छायावादी कवियों ने प्रकृति को एक सजीव सत्ता, चेतना और 'माता' के रूप में स्वीकार किया।

सुमित्रानंदन पंत: प्रकृति के अनन्य आराधक

पंतजी को प्रकृति का सुकुमार कवि कहा जाता है। उनकी चेतना वेदों के 'भूमि सूक्त' से प्रभावित थी। अपनी प्रसिद्ध कविता 'धरती कितना देती है' में वे लिखते हैं:

"रत्नप्रसविनीहैवसुधा, अबसमझसकाहूँ।

ISSN-2319-8478
Vol-15 Issue-3, June 2026

इसमें सच्ची समता के दाने बोने हैं, इसमें जन की क्षमता के दाने बोने हैं॥"

पंतजी यह समझ चुके थे कि धरती माँ हमें सब कुछ बिना मांगे देती है, लेकिन यदि मनुष्य स्वार्थी होकर इसमें 'लालच के बीज' बोएगा, तो विनाश निश्चित है। प्रकृति के सुकुमार कविपंतजी के लिए प्रकृति इतनी सर्वोपरि थी कि वे सांसारिक आकर्षणों को छोड़कर प्रकृति की गोद में जाने को तैयार थे:

"छोड़द्रुमोंकीमृदुछाया, तोड़प्रकृतिसेभीमाया,

बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन?"

उनकी 'परिवर्तन' और 'धरती कितना देती है' जैसी कविताएं मिट्टी की अनंत महिमा और मनुष्य के लालच पर गहरा कटाक्ष करती हैं।

जयशंकर प्रसाद: 'कामायनी' और जल-प्रलय की चेतावनी

जयशंकर प्रसाद का महाकाव्य 'कामायनी' आधुनिक विश्व के लिए पर्यावरण संकट की सबसे बड़ी चेतावनी है। कामायनी की कथा 'देव संस्कृति' के विनाश से शुरू होती है। देव संस्कृति ने प्रकृति का अत्यधिक दोहन किया, विलासिता की सीमाएं पार कीं, और खुद को प्रकृति का स्वामी समझ लिया। परिणाम स्वरूप प्रकृति ने 'जल प्रलय' के रूप में सब कुछ नष्ट कर दिया:

"ओह! संकीर्णनभकेनीचे, डूबीजारहीथीधरती।

अथक सिसकियों से विह्वल हो, लहरें टकरातीं, गिरतीं॥"

प्रसादजी इसके समाधान के रूप में 'समन्वय' का सिद्धांत देते हैं, जो मनुष्य और प्रकृति के बीच संतुलन (Ecological Equilibrium) की बात करता है।

जयशंकर प्रसाद: 'कामायनी' और जल प्रलय की चेतावनी

प्रसाद जी की 'कामायनी' एक तरह से पारिस्थितिक असंतुलन की ही कथा है। देव संस्कृति ने जब भोग-विलास की अति कर दी और प्रकृति का अनियंत्रित दोहन किया, तो प्रकृति ने 'जल प्रलय' के रूप में विनाश किया। मनु के माध्यम से प्रसाद जी 'शैव दर्शन' और 'पंचमहाभूत' के संतुलन की बात करते हैं:

"शक्तिकेविद्युतकणजोव्यस्त, विकलबिखरेहैंहोनिरुपाय।

समन्वय उसका करे समस्त, विजयीनी मानवता हो जाय॥"

यहाँ 'समन्वय' और कुछ नहीं, बल्कि प्रकृति और मनुष्य के बीच का संतुलन (Ecological Equilibrium) ही है।

उत्तर-छायावाद और प्रगतिवाद: बदलता परिदृश्य:-

प्रगतिवादी कवियों ने अरण्य संस्कृति (Forest Culture) के उजड़ने और औद्योगिकीकरण के कारण गाँव के पर्यावरण के नष्ट होने पर चिंता व्यक्त की।केदारनाथ अग्रवाल: उन्होंने 'केन किनारे' और 'बांस का झुरमुट' जैसी कविताओं के माध्यम से नदियों और स्थानीय वनस्पतियों के साथ आम आदमी के जुड़ाव को दिखाया।नागार्जुन: 'बादल को घिरते देखा है' में नागार्जुन हिमालय के शुद्ध, प्रदूषण-मुक्त पारिस्थितिक तंत्र का सजीव चित्रण करते हैं, जो आधुनिक पाठक के मन में प्रकृति को बचाने की ललक पैदा करता है।

समकालीन हिंदी साहित्य और 'पर्यावरण-विमर्श' (Eco-criticism) :-

स्वतंत्रता के बाद के भारत में जब 'विकास' के नाम पर बड़े-बड़े बांध बनाए जाने लगे, जंगलों को काटा जाने लगा और कंक्रीट के शहर

ISSN-2319-8478
Vol-15 Issue-3, June 2026

बसने लगे, तब हिंदी साहित्य में 'पर्यावरण-विमर्श' (Eco-criticism) का एक नया दौर शुरू हुआ। यह विमर्श केवल प्रकृति की सुंदरता की बात नहीं करता, बल्कि पर्यावरण विनाश के राजनीतिक और आर्थिक कारणों पर तीखे सवाल उठाता है।आज के हिंदी साहित्य में 'पर्यावरण-विमर्श' एक प्रमुख आंदोलन बन चुका है। लेखक अब सीधे तौर पर ग्लोबल वार्मिंग, जंगलों की कटाई और कंक्रीट के जंगलों (शहरीकरण) पर लिख रहे हैं।

उपन्यासों में आंचलिक पारिस्थितिकी:-

फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल'ने पूर्णिया के अंचल की मिट्टी, नदियों, लोकगीतों और वहां के जीवों का जो ताना-बाना बुना है, वह 'डीप इकोलॉजी' (Deep Ecology) का बेहतरीन उदाहरण है।फणीश्वरनाथ रेणु (मैला आँचल): रेणुजी ने पूर्णिया के अंचल का जो चित्रण किया है, उसमें वहां की मिट्टी, नदियां (जैसे कोसी), बगुले, कछुए और घास-फूस सब कथा के मुख्य पात्र हैं। वे दिखाते हैं कि कैसे आधुनिक सभ्यता के प्रवेश से इस अंचल का प्राकृतिक और सांस्कृतिक पारिस्थितिकी तंत्र दूषित होता है।विनोद कुमार शुक्ल: उनके उपन्यासों (जैसे- 'नौकर की कमीज़', 'सब कुछ होना बचा रहेगा') में पर्यावरण को बचाने की एक गहरी दार्शनिक छटपटाहट है। वे लिखते हैं कि पेड़ों का बचे रहना केवल ऑक्सीजन के लिए नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर की मनुष्यता को बचाए रखने के लिए ज़रूरी है।

समकालीन कविता: कटते पेड़ और सूखती नदियाँ

आधुनिक कवियों ने सीधे तौर पर ग्लोबल वार्मिंग और शहरीकरण पर प्रहार किया है। कवि कुंवर नारायण अपनी प्रसिद्ध कविता 'एक अजीब दिन' में एक पेड़ के काटे जाने पर लिखते हैं:

"एक पेड़ कट गया आज मेरे घर के सामने से,

वह रास्ता जो जाता था सदियों पुराना...

कितने परिंदों के घोंसले उजड़ गए एक साथ।"

कुंवर नारायण यहाँ स्पष्ट करते हैं कि एक पेड़ का कटना केवल एक वनस्पति का नष्ट होना नहीं है, बल्कि एक पूरे 'इकोसिस्टम' का उजाड़ना है। इसी तरह कवि मंगलेश डबराल और एकांत श्रीवास्तव की कविताओं में विस्थापित होते पहाड़ों और प्रदूषित होती नदियों का दर्द मुखर हुआ है।

वैश्विक प्रासंगिकता:-

आदि काल से लेकर समकालीन कविता तक हिंदी साहित्य का यह अनुशीलन यह सिद्ध करता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में पारिस्थितिकी कोई नया या आयातित विषय नहीं है। पश्चिमी दुनिया जिसे आज 'सस्टेनेबिलिटी' या 'हरित राजनीति' (Green Politics) कह रही है, वह हमारे साहित्य में सदियों से रची-बसी है।हिंदी साहित्य हमें सिखाता है कि पर्यावरण को बचाने के लिए केवल फैक्ट्रियों पर प्रतिबंध लगाना या 'कार्बन क्रेडिट' खरीदना काफी नहीं है। इसके लिए मनुष्य की चेतना को बदलना होगा। हमें प्रकृति को 'उपभोग की वस्तु' समझने के बजाय उसका सम्मान करना होगा। हिंदी साहित्य की यह पर्यावरण चेतना आज के वैश्विक समाज को विनाश के कगार से बचाकर एक सुरक्षित और संतुलित भविष्य की ओर ले जाने का मार्ग प्रशस्त करती है।

निष्कर्ष:-

हिंदी साहित्य की यह यात्रा स्पष्ट करती है कि भारत की ज्ञान परंपरा कभी भी प्रकृति से विमुख नहीं रही। हमारे कवियों ने वेदों के "माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः" के सिद्धांत को कविता की भाषा में आम जनता तक पहुँचाया। आज जब दुनिया 'ग्रीन लिटरेचर' (Green Literature) की बात कर रही है, तब हिंदी साहित्य के पास कबीर की सादगी, पंत का

ISSN-2319-8478
Vol-15 Issue-3, June 2026

प्रकृति-प्रेम और प्रसाद की दूरदर्शिता का समृद्ध खजाना है।

पारिस्थितिक संकट से उबरने के लिए हमें आज फिर से उसी साहित्यिक चेतना की ओर लौटना होगा, जो हमें सिखाती है कि प्रकृति बचेगी, तभी मनुष्य बचेगा।

संदर्भ सूची (References)

1. शुक्ल, रामचंद्र (2019), "हिंदी साहित्य का इतिहास", लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. प्रसाद, जयशंकर (2015), "कामायनी", भारती भंडार, इलाहाबाद।
3. पंत, सुमित्रानंदन (2018), "चिदंबरा", राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. मिश्रा, अनुपम (1993), "आज भी खरे हैं तालाब", गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली।
5. ग्लोटी, चेरिल (1996), "द इको-क्रिटिसिज्म रीडर: लैंडमार्क्स इन लिटरेरी इकोलॉजी", यूनिवर्सिटी ऑफ जॉर्जिया प्रेस।
6. रेणु, फणीश्वरनाथ (1954), "मैला आँचल", राजकमल प्रकाशन।
7. कबीर ग्रंथावली, संपादक: श्यामसुंदर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।